शिक्षा के संबंध में

❑ अल्बर्ट आइंस्टीन

विज्ञान के दर्शन की मानववादी व्याख्या करने वाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने शिक्षा पर भी सूत्रबद्ध विचार व्यक्त किये हैं । यह दस्तावेज उनके द्वारा अमरीका की उच्च शिक्षा के त्रिशताब्दी समारोह के अवसर पर अलबनी न्यूयार्क में 15 अक्टूबर, 1936 को दिये गये अभिभाषण का लिखित रूप है । हम इसे 'सामयिक वार्ता' (नव'2000) से पुनर्प्रकाशित कर रहे हैं जिसका अंग्रेजी से अनुवाद श्री नवल किशोर ने किया था । इसी भाषण में आइंस्टीन शिक्षा पर किसी विद्वान की परिभाषा को उद्धृत करते हैं: ''विद्यालय में सीखा हुआ सब कुछ भूल जाने के बाद भी जो बच जाता है वही शिक्षा है ।''

कोई भी समारोह का दिन सामान्यत: पीछे मुड़कर देखने का दिन होता है, खास तौर पर वैसे मनीषियों को स्मरण करने का दिन होता है जिन्होंने सांस्कृतिक जीवन के विकास के लिए विशेष ख्याति अर्जित की है । इन पूर्वजों के प्रति ऐसे मैत्रीपूर्ण अनुष्ठान की कदापि उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, विशेषत: इस कारण से कि अतीत के श्रेष्ठ मनीषियों का स्मरण वर्तमान के अच्छे लोगों को साहसपूर्ण प्रयत्न करने की प्रेरणा देता है । परंतु ऐसे अनुष्ठान का पुरोहित उसी व्यक्ति को होना चाहिये जो उस देश से अपनी युवावस्था से ही संबंधित रहा हो और उसके अतीत से परिचित हो, न कि ऐसे व्यक्ति को जो जिप्सी की तरह घूमता रहा हो और जिसने अपने सभी अनुभव अलग-अलग देशों में प्राप्त किये हों ।

अत: मेरे लिए यह उचित है कि मैं ऐसे ही मुद्दों पर बोलूं जो देश और काल की सीमा से परे सदा ही शैक्षिक समस्याओं से जुड़े रहे हैं और आगे भी रहेंगे । इस प्रयत्न में अधिकारी की हैसियत रखने का मेरा कोई दावा नहीं हो सकता है, विशेषत: इसलिए की सभी युगों के सुधीजनों ने शैक्षिक समस्याओं पर विचार किया है और इन पर बार-बार स्पष्टता से अपने मंतव्य रखे हैं । शिक्षा शास्त्र में मेरी हैसियत एक अधूरे अविशेषज्ञ की है । अत: मैं अपने निजी अनुभवों तथा अपनी धारणाओं के अतिरिक्त अन्य किस स्रोत को अपने मतों के प्रतिपादन का आधार बनाने की जुर्रत कर सकता हूं? यदि यह सचमुच विज्ञान का मामला होता तो इन बातों को ध्यान में रखते हुए संभवत: चुप रहना ही बेहतर समझता ।

तथापि जहां क्रियाशील मानवीय प्राणियों का मामला हो, बात भिन्न होती है । यहां सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही काफी नहीं होता है; इसके विपरीत इस ज्ञान को अनवरत प्रयत्नों द्वारा लगातार नया बनाते रहना भी आवश्यक होता है ताकि यह ज्ञान खो न जाए । यह ज्ञान संगमरमर की उस मूर्ति के समान है जिस पर यह खतरा है कि लगातार खिसक रही बालुका राशि उसे सर्वथा ढंक न ले । जरूरत इस बात की है कि सेवा करने वाले हाथों के साथ होंगे।

परंपरा की संपदा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने में विद्यालय सदा से सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है । पहले के जमाने की तुलना में यह बात आज और भी अधिक सार्थक है, क्योंकि आर्थिक जीवन के आधुनिक विकास के फलस्वरूप परंपरा एवं शिक्षा के वाहक के रूप में परिवार की स्थिति कमजोर पड़ गयी। अत: मानव समाज को बनाए रखने तथा इसके स्वास्थ्य के लिए आज विद्यालय पर निर्भरता पहले की तुलना में कहीं अधिक है ।

यदा-कदा विद्यालय को नयी पीढ़ी तक अधिक से अधिक ज्ञान को हस्तांतरित करने वाले साधन मात्र के रूप में देखा जाता है। यह दृष्टि सही नहीं है । ज्ञान मृत होता है, जबकि विद्यालय जीवितों की सेवा करता है। इसे अल्पवयस व्यक्तियों के बीच उन गुणों एवं क्षमताओं को विकसित करना चाहिए जो समाज के कल्याण के लिए मूल्यवान हैं । परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वैयतिकता को नष्ट कर दिया जाए और व्यक्ति मधुमक्खी या चींटी की तरह समाज का महज पुरजा बन कर रह जाए । जिस समाज में व्यक्तिनिष्ठ मौलिकता से हीन एक ही तरह के व्यक्ति होंगे वह समाज विकास की संभावना से हीन एक दरिद्र समाज होगा। इसके विपरीत, स्वतंत्र ढंग से काम करने और सोचने वाले व्यक्तियों का प्रशिक्षण ही लक्ष्य होना चाहिए; तथापि, वे व्यक्ति ऐसे हों जो समाज की सेवा को ही अपने जीवन का व्रत समझें । जहां तक मेरी समझदारी है, इंगलैंड की विद्यालय-व्यवस्था इस आदर्श की प्राप्ति के सबसे नजदीक है।

परंतु हम इस आदर्श को पाने का प्रयास कैसे करेंगे ? क्या नीति प्रवंचन के द्वारा ? कदापि नहीं । शब्द खोखले हैं और रहेंगे। तथा किसी आदर्श की महज मुंहपुराई से सदा ही सत्यानाश का मार्ग प्रशस्त हुआ है । व्यक्तित्व का निर्माण श्रम और कर्म से होता है, न कि उससे जो सुना गया और कहा गया ।

अतएव सदा ही शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद्धति वही रही है जिसमें विद्यार्थी को वास्तविक क्रियाशीलन के लिए प्रेरित किया जाता रहा है । यह बात प्राथमिक कक्षा के बच्चे द्वारा लिखने के प्रारंभिक प्रयासों पर उसी तरह लागू है जिस तरह विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में डॉक्टरेट की उपाधि के लिए स्वीकृत थीसिस पर, या जब किसी कविता को कंठस्थ करना हो, कोई रचना लिखनी हो, किसी पाठ की व्याख्या और अनुवाद करने का मामला हो, गणित की किसी समस्या का समाधान ढूंढना हो, या जब किसी शारीरिक खेलकूद का अभ्यास करना हो ।

परंतु सभी उपलब्धियों के पीछे प्रेरणा का आधार होता है, और यह प्रेरणा स्वयं प्रयास की सफलता से मजबूत और पुष्ट होती है । यहीं सबसे बड़े अंतर सामने आते हैं, जो विद्यालय के शैक्षिक महत्व की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व के हैं। एक ही काम भय और मजबूरी से, सत्ता और प्रसिद्धि की महत्वाकांक्षा से संपादित हो सकता है। और उसके मूल में हो सकती है उस कार्य के प्रति प्रेमपूर्ण रुचि, सच्चाई और समझदारी प्राप्त करने की इच्छा तथा वह नैसर्गिक जिज्ञासा जिससे सभी स्वस्थ बच्चे युक्त होते हैं, पर जो अक्सर कम उम्र में ही कमजोर पड़ गई होती है । एक ही कार्य के सफल संपादन के फलस्वरूप विद्यार्थी पर पड़ने वाला शैक्षिक प्रभाव व्यापक तौर पर अलग अलग हो सकता है, जो इस पर निर्भर है कि इस कार्य के पीछे कौन-सी प्रेरणा रही है - भय या आघात की, स्वार्थ मूलक वासना की, या सुख एवं संतोष की । कोई भी यह नही कहेगा कि शिष्यों के मनोवैज्ञानिक आधार को ढालने में विद्यालय के प्रशासन का तथा शिक्षकों के रुख का प्रभाव नहीं पड़ता है ।

कोई विद्यालय मुख्यत: भय, दबाव या कृत्रिम सत्ता की पद्धतियों के सहारे काम करे, यह मुझे सबसे बुरी बात लगती है । ऐसा व्यवहार शिष्य की निर्दोष भावनाओं को, उसकी ईमानदारी और उसके आत्मविश्वास को नष्ट करता है, और यह दब्बू नागरिक पैदा करता है। मैं जानता हूं कि इस देश के विद्यालय इस घोरतम बुराई से मुक्त हैं; ऐसा ही स्विटजरलैंड में, और संभवत: सभी लोकतांत्रिक देशों में है । अन्य बुराइयों की तुलना में इस बुराई से विद्यालय को बचाना अपेक्षाकृत आसान है । शिक्षक को दंडविधान की न्यूनतम शक्तियाँ दी जाएं, ताकि शिक्षक के प्रति शिष्य के सम्मान का एक ही आधार हो - शिक्षक के मानवीय एवं बौद्धिक गुण ।

कोई विद्यालय मुख्यत: भय, दबाव या कृत्रिम सत्ता की पद्धतियों के सहारे काम करे, यह मुझे सबसे बुरी बात लगती है । ऐसा व्यवहार शिष्य की निर्दोष भावनाओं को, उसकी ईमानदारी और उसके आत्मविश्वास को नष्ट करता है, और यह दब्बू नागरिक पैदा करता है। मैं जानता हूं कि इस देश के विद्यालय इस घोरतम बुराई से मुक्त हैं; ऐसा ही स्विटजरलैंड में, और संभवत: सभी लोकतांत्रिक देशों में है । अन्य बुराइयों की तुलना में इस बुराई से विद्यालय को बचाना अपेक्षाकृत आसान है । शिक्षक को दंडविधान की न्यूनतम शक्तियाँ दी जाएं, ताकि शिक्षक के प्रति शिष्य के सम्मान का एक ही अधिकार हो – शिक्षक के मानवीय एवं बौद्धिक गुण ।

ऊपर जिस महत्वाकांक्षा, या नरम शब्दावली में कहें, मान्यता तथा महत्व पाने की इच्छा का मानवीय कार्य की प्रेरणा के रूप में किया गया है, वह मानव स्वभाव में मजबूती से स्थापित है । इस प्रकार के मानसिक उद्दीपन के अभाव में मानवीय सहयोग सर्वथा असंभव होगा, अपने सहमानवों के अनुमोदन की आकांक्षा समाज को बांधने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्तियों में एक है । भावनाओं के इस पुंज में सृजनात्मक तथा विध्वंसात्मक शक्तियां एक दूसरे के बहुत करीब रहती हैं। अनुमोदन एवं मान्यता पाने की इच्छा एक स्वस्थ्य प्रेरणा है; परंतु दूसरे सह-मानव या साथी विद्धान की तुलना में अधिक अच्छा, अधिक मजबूत या अधिक बुद्धिमान समझे जाने की इच्छा अत्यधिक अहंवादी मानसिकता को जन्म दे सकती है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक बन जा सकती है। अत: विद्यालय तथा शिक्षक को सतर्क रहना होगा कि छात्रों को अध्यवसाय तथा कर्म करने की प्रेरणा देने के लिए व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पैदा करने के आसान तरीके का सहारा नही लिया जाए ।

बहुत से लोग स्पर्धा की भावना के प्रोत्साहन के समर्थन में डार्विन के अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा उससे जुड़ी चयनात्मकता के सिद्धांत का हवाला देते हैं । इसी तरह कुछ लोगों ने अर्ध वैज्ञानिक तौर पर व्यक्तियों के बीच के विध्वंसात्मक आर्थिक संशयों की आवश्यकता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। परंतु यह गलत है क्योंकि अस्तित्व के संघर्ष में आदमी की ताकत इसलिए ही है कि वह सामाजिक तौर पर जीने वाला प्राणी है । चीटियों के किसी समूह की अलग-अलग चीटियों का अस्तित्व रक्षा के लिए

एक दूसरे से युद्ध करना उतना ही अनावश्यक है जितना मानवीय समुदायों के व्यक्तिगत सदस्यों के लिए ।

अतएव हमें नौजवानों के बीच पारंपरिक अर्थ में जीवन के लक्ष्य के रूप में सफलता का उपदेश करने के मामले में सतकर्ता बरतनी होगी, क्योंकि सफल व्यक्ति उसे माना जाता है जो अपने सहमानवों से जो प्राप्त करता है वह उन्हें प्रतिदान में दी गयी सेवा से बहुत अधिक होता है । परंतु वास्तव में किसी मनुष्य का मूल्य इससे तय किया जाना चाहिए कि वह कितना देता है, न कि इससे कि वह कितना पा सकने में समर्थ है ।

विद्यालय में या जीवन में काम की सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा है काम से मिलनेवाला आनंद, उसके फल की प्राप्ति का आनंद तथा समाज के लिए इस फल के महत्व का ज्ञान । मेरी समझ में इन मनोभावों को युवावर्ग के बीच जाग्रत करना एवं उन्हें मजबूत बनाना ही विद्यालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है । इसी मनोवैज्ञानिक आधार पर सर्वोच्च मानवीय उपलिब्धियों अर्थात कलाकारों वाली कमनीय कलात्मकता को प्राप्त करने की आहलाददायनी इच्छा जन्म लेती है । यद्यपि दंड के प्रयोग या वैयक्तिक महत्वाकांक्षा को उभारने की अपेक्षा सृजनात्मक मानसिकता को जागृत करना अधिक कठिन है, पर इस कारण ही यह अधिक मूल्यवान है । मूल बात है कि खेल की बाल सुलभ प्रवृत्ति तथा मान्यता-प्राप्ति की बाल सुलभ इच्छा को विकसित किया जाए तथा ऐसे क्षेत्रों में बच्चे का मार्गदर्शन किया जाए जो समाज के लिए महत्वपूर्ण है । यह वह शिक्षा है जो मुख्यत: सफल कार्य संपादन तथा स्वीकार किए जाने की इच्छा पर आधारित होती है। यदि इस दृष्टि को लेकर विद्यालय काम करने में सफल होता है तो इसे उदीयमान पीढ़ी का सम्मान प्राप्त होगा तथा विद्यालय द्वारा दी गई सीख को वरदान के रूप में स्वीकार किया जाएगा । मुझे ऐसे बच्चों की जानकारी है जो विद्यालय की पढ़ाई की अवधि को छुट्टी की अवधि से अधिक पसंद करते रहे हैं ।

शिक्षक से ऐसे विद्यालय की यह अपेक्षा होती है कि वह अपने क्षेत्र में कलाकार जैसा हो । कौन से कदम उठाए जाएं कि विद्यालय में ऐसी भावना व्याप्त हो ? जैसे किसी व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य का कोई एक नुस्खा नहीं है उसी तरह इसके लिए भी कोई सार्वभौम उपचार नहीं है । परंतु कुछ शर्तों को पूरा किया जा सकता है। पहली बात यह कि ऐसे विद्यालयों में शिक्षक का विकास होना चाहिए । दूसरे, पाठ्यसामग्री के चयन तथा अध्यापन की पद्धति के मामले में शिक्षक को व्यापक आजादी होनी चाहिये । वस्तुत: यह बात उसके संबंध में भी सही है कि दंड और बाह्य दबाव काम को कार्यरूप देने के आनंद को कुंठित कर देता है ।

भाषा को प्रमुखता दी जाय या विज्ञान की तकनीकी शिक्षा को ?

इस प्रश्न पर मेरा जवाब यही होगा कि यह गौण महत्व की बात है ? यदि किसी नौजवान ने अपनी मांसपेशियों को तथा शरीर की सहन शक्ति को व्यायाम और टहलने के अभ्यास से मजबूत बनाया है तो बाद में वह सभी प्रकार के शारीरिक परिश्रम करने में सक्षम होगा। मस्तिष्क के प्रशिक्षण तथा मानसिक एवं शारीरिक दक्षता के प्रयोग के साथ भी इसका सादृश्य है । किसी बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा दी गयी शिक्षा की यह परिभाषा गलत नहीं है : ''विद्यालय में सीखा हुआ सब कुछ भूल जाने के बाद भी जो बच जाता है वही शिक्षा है ।'' इस कारण से मैं क्लासिकी भाषाशास्त्रीय-ऐतिहासिक शिक्षा के हिमायतियों और प्राकृतिक विज्ञान की ओर उन्मुख शिक्षा के अनुयायियों के बीच के विवाद में किसी एक का पक्ष लेने के लिए कतई आतुर नहीं हूं ।

दूसरी ओर में इस विचार का विरोध करना चाहता हूं कि विद्यालय का काम बाद के जीवन में प्रत्यक्ष इस्तेमाल के लिए विशेष ज्ञान तथा दक्षता को प्रत्यक्षत: सिखलाना है । जीवन की मांगे इतनी बहुविधि हैं कि विद्यालय में उनका विशेषीकृत प्रशिक्षण देना संभव प्रतीत नहीं होता है । इसके अतिरिक्त, मुझे यह समझदारी भी आपत्तिजनक लगती है कि व्यक्ति बेजान औजार की तरह है । विद्यालय का लक्ष्य सदा ही यह होना चाहिये कि यहां से नौजवान समन्वित व्यक्तित्व से संपन्न होकर निकलें, न कि विशेषज्ञ के रूप में । कुछ मायनों में मेरी यह धारणा तकनीकी विद्यालयों के संबंध में भी है । जिसके छात्रों को किसी निश्चित पेशे के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । स्वतंत्र चिंतन एवं निर्णय की क्षमता के विकास को सर्वोपरि लक्ष्य मानना चाहिए न कि विशेष ज्ञान की प्राप्ति को। यदि कोई व्यक्ति अपने विषय का बुनियादी ज्ञान हासिल कर लेता है और उसने स्वतंत्र रूप से सोचना और काम करना सीख लिया है तो वह निश्चय ही अपनी राह ढूंढ लेगा और इसके अतिरिक्त, वह प्रगति तथा परिवर्तनों के संदर्भ में अपने को उस व्यक्ति की तुलना में अधिक अच्छे ढंग से अनुकूल बना सकेगा जिसने तफसीली ज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त किया हो।

अंतत: मैं पुन: इस बात पर जोर देना चाहूंगा कि यहां जो कुछ भी थोड़ी निश्चितता के साथ कहा गया है वह एक व्यक्ति की निजी राय है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह राय शिक्षक और शिक्षार्थी के रूप में उसके द्वारा एकत्र किए गए निजी अनुभव पर ही आधारित है, अन्य किसी चीज पर नहीं। ◆